Think IAS...

दृष्टि The Vision

Think Drishti

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

इतिहास (वैकल्पिक विषय)

विश्व इतिहास (भाग-3)

UNITED NATIONS

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

Code: CSHS10

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

इतिहास (वैकल्पिक विषय)

विश्व इतिहास (भाग–3)

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष : 011-47532596, 8750187501
टोल फ्री : **1800-121-6260**
Web : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिये निम्नलिखित पेज को "like" करें
www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
www.twitter.com/drishtiias

UPSC DLP

विषय सूची (Contents)

19.	शीतयुद्ध : दो शक्तियों का आविर्भाव	5-32
20.	तृतीय विश्व एवं गुटनिरपेक्षता का आविर्भाव	33-58
21.	संयुक्त राष्ट्र संघ एवं वैश्विक विवाद	59-100
22.	यूरोप का एकीकरण	101-113
23.	सोवियत संघ का विघटन	114-124
24.	यूरोपीय साम्राज्यवाद : अफ्रीका व एशिया	125-144
25.	औपनिवेशिक शासन से मुक्ति	145-164

अध्याय
19

शीतयुद्ध : दो शक्तियों का आविर्भाव (Cold War : Rise of Two Powers)

19.1 शीतयुद्ध : अर्थ एवं प्रकृति
19.2 शीतयुद्ध के कारण
19.3 शीतयुद्ध की प्रगति एवं विस्तार : विभिन्न चरण
19.4 शीतयुद्ध का अंत
19.5 शीतयुद्ध का प्रभाव

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व में दो महाशक्तियाँ रह गईं और इन दो महाशक्तियों के आपसी संबंधों को अभिव्यक्त करने वाला सबसे अधिक उपयुक्त शब्द है- शीतयुद्ध। यद्यपि विश्वयुद्ध से पूर्व अमेरिका व 'सोवियत संघ' में बुनियादी मतभेद थे, फिर भी युद्ध के दौरान उन्होंने धुरी राष्ट्रों- जर्मनी, जापान, ऑस्ट्रिया और तुर्की के ख़िलाफ मिलकर युद्ध लड़ा और अंततः विजयी हुए। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सोवियत संघ- अमेरिका संबंधों में कटुता, वैमनस्य और अविश्वास में वृद्धि होती गई। दोनों महाशक्तियों में राजनीतिक प्रचार का संग्राम छिड़ गया और दोनों एक-दूसरे का विरोध, आलोचना और सर्वत्र अपना प्रसार करने में लग गए। महाशक्तियों के बीच बने तनावपूर्ण संबंधों से अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा। समूचे विश्व में एक प्रकार के भय, अविश्वास और तनाव का वातावरण बन गया, जिससे पुनः एक बार संघर्षपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई। इन सब वजहों से एक नए युग का आविर्भाव हुआ, जिसे 'सशस्त्र शांति का युग' कहा जाता है। इसी बिंदु पर यह सवाल उठता है कि आखिर इन दोनों महाशक्तियों के बीच अविश्वास, तनाव और कटुता की स्थिति क्यों पैदा हो गई। इस प्रश्न का उत्तर ही हमें शीतयुद्ध के कारणों को समझने में सहायता देगा। शीतयुद्ध के कारणों, परिणाम एवं प्रकृति की मीमांसा (सूक्ष्म विश्लेषण) करने से पहले 'शीतयुद्ध' शब्द का अर्थ एवं विशेषताओं को समझना वांछनीय होगा।

19.1 शीतयुद्धः अर्थ एवं प्रकृति *(Cold War: Meaning and Nature)*

शीतयुद्ध का अर्थ

शीतयुद्ध शब्द वाल्टर लिपमैन नामक विद्वान द्वारा गढ़ा गया। शीतयुद्ध शब्द से सोवियत संघ-अमेरिकी शत्रुतापूर्ण एवं तनावपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की अभिव्यक्ति होती है। शीतयुद्ध एक प्रकार का वाक्युद्ध था। इसमें वैचारिक घृणा, राजनीतिक अविश्वास, कूटनीतिक जोड़-तोड़, सैनिक प्रतिस्पर्द्धा, जासूसी और मनोवैज्ञानिक युद्ध जैसे तत्त्व शामिल थे।

- शीतयुद्ध वास्तविक युद्ध नहीं था अपितु युद्ध का वातावरण था। **नेहरू** के शब्दों में- शीतयुद्ध का वातावरण 'निलंबित मृत्युदंड के वातावरण' (Some kind of suspended death sentence) के समान तनावपूर्ण था। यह गरम युद्ध से भी अधिक भयानक युद्ध था, क्योंकि यह चिंतन, भावनाओं एवं मनोवेगों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता था।
- **फ्लेमिंग के अनुसार**- 'शीतयुद्ध' युद्ध-स्थल में नहीं लड़ा जाता, परंतु मानवों के मस्तिष्क में होता है; एक व्यक्ति अन्य के मस्तिष्कों को नियंत्रित करने का प्रयास करता है।
- **के.पी.एस. मेनन** के अनुसार- "शीतयुद्ध, जैसा कि विश्व ने अनुभव किया, दो विचारधाराओं, दो पद्धतियों, दो गुटों, दो राज्यों और जब वह अपनी पराकाष्ठा पर था तो दो व्यक्तियों के मध्य उग्र संघर्ष था। दो विचारधाराएँ थीं- पूंजीवाद और साम्यवाद। दो पद्धतियाँ थीं- संसदीय लोकतंत्र बनाम बुर्जुआ जनतंत्र एवं सर्वहारा वर्ग की तानाशाही। दो गुट थे- नाटो और वारसा पैक्ट। दो राज्य थे- संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ और दो व्यक्ति थे- जॉन फॉस्टर और जोसेफ स्टालिन डलेस।"

शीतयुद्ध की प्रकृति

- शीतयुद्ध एक ऐसी स्थिति है, जिसे मूलतः 'उष्ण शांति' (Hot peace) कहा जाना चाहिये। ऐसी स्थिति में न तो पूर्ण रूप से शांति रहती है और न ही वास्तविक युद्ध होता है बल्कि शांति और युद्ध के बीच की अस्थिर स्थिति बनी रहती है।

- सोवियत संघ का महाशक्ति के रूप में पतन हो गया और विश्व एकध्रुवीय विश्व की ओर अग्रसर हुआ।
- शीतयुद्ध की समाप्ति से विश्व राजनीति में 'हितों के संतुलन ने' 'भय के संतुलन' का स्थान ले लिया।
- अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के मुख्य मुद्दे सुरक्षा और विचारधारा के बजाय व्यापार और पूंजी निवेश बन गए।
- परमाणु हथियारों के अप्रसार संबंधी समझौतों पर बल दिया गया।
- शीतयुद्ध की समाप्ति से जर्मनी का एकीकरण 1989 में हो गया।
- तृतीय विश्व एवं उसके गुटनिरपेक्ष आंदोलन की भूमिका में परिवर्तन।
- संयुक्त राष्ट्र के कार्यों में 'वीटो प्रयोग' में कमी।
- मध्यवर्ती परमाणु प्रक्षेपास्त्र निषेध संधि (Intermediate Range Nuclear Forces Treaty: IRNF) अमेरिका-सोवियत संघ के मध्य 1987 में संपन्न हुई।
- स्ट्रेटेजिक आर्म्स रिडक्सन ट्रीटी-1 (स्टार्ट-1) July-1991, START-2 (2010) अमेरिका और रूस के बीच सफलतापूर्वक लागू हुई।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. वैमनस्य शैथिल्य की ओर बढ़ती हुई परिस्थितियों की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिये। **UPSC (Mains) 2016**
2. "ट्रूमैन सिद्धांत (Trueman Doctrine) एवं मार्शल प्लान को रूसी धड़े ने रूसी प्रभाव को सीमित करने के लिये एक शस्त्र के रूप में माना।" समालोचनात्मक परीक्षण कीजिये। **UPSC (Mains) 2015**
3. 1956 के स्वेज़ संकट की उत्तरदायी परिस्थितियों का विवेचन कीजिये और वैश्विक राजनीति पर इसके प्रभावों का परीक्षण कीजिये। **UPSC (Mains) 2014**
4. "एशिया के पुनरुत्थान की घटना द्वितीय विश्वयुद्ध में प्रयुक्त परमाणु बम से भी अधिक विस्फोटक थी।" टिप्पणी कीजिये।
5. शीतयुद्ध को वास्तविक युद्ध में तब्दील होने से रोकने में तृतीय विश्व एवं गुटनिरपेक्ष संगठन की भूमिका का परीक्षण कीजिये।
6. शीतयुद्ध वास्तविक युद्ध न होकर एक असफल कूटनीतिक युद्ध था या फिर कूटनीतिक असफलता का परिणाम था। स्पष्ट कीजिये।
7. "शीतयुद्ध ने तृतीय विश्व को जन्म दिया, जिसने तृतीय विश्वयुद्ध के अंकुरित पौधे को वृक्ष का रूप धारण नहीं करने दिया।" विश्लेषण कीजिये।
8. शीतयुद्ध घने कोहरे के समान था, जिसमें दिन होने के बावजूद कुछ भी स्पष्ट नहीं देखा जा सका। चर्चा कीजिये।
9. शीतयुद्ध को 'स्नायु युद्ध' और 'मनोवैज्ञानिक युद्ध' कहना कहाँ तक उचित है?
10. "शीतयुद्ध के पश्चात् तृतीय विश्वयुद्ध हेतु छाए घने बादल नाभिकीय हथियारों की दौड़ के फलस्वरूप समाप्त हुए, अंततः विश्व पहले से अधिक सुरक्षित है।" विश्लेषण कीजिये।
11. "प्रथम विश्वयुद्ध के समय ही शीतयुद्ध का बीजारोपण हो चुका था।" दिये गए कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?
12. यह कहना कहाँ तक उचित है कि चर्चिल के फुल्टन भाषण के पश्चात् शीतयुद्ध की वास्तविक जमीन तैयार हुई, परंतु ट्रूमैन के सिद्धांत ने इसे अपने पैरों पर खड़ा किया, जिसकी वजह से आइजनहॉवर ने इसे गति प्रदान की।
13. नव शीतयुद्ध से आप क्या समझते हैं? इस चरण को 'सभी साधनों का संघर्ष' कहना कहाँ तक सही है?
14. 1947 एवं 1962 के मध्य शीतयुद्ध के विभिन्न आयामों तथा अवस्थाओं का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।
15. "1989 में बर्लिन दीवार का विध्वंस यूरोप में सहयोग के नए विचारों को लेकर आया।" समालोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये।

अध्याय
20

तृतीय विश्व एवं गुटनिरपेक्षता का आविर्भाव (Emergence of Third World and Non–Alignment)

20.1 तृतीय विश्व का आविर्भाव	20.3 भारत एवं गुटनिरपेक्ष नीति
20.2 गुटनिरपेक्षता	20.4 गुटनिरपेक्षता: समग्र अवलोकन

20.1 तृतीय विश्व का आविर्भाव *(Emergence of the Third World)*

'तृतीय विश्व' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग फ्राँस के जनसंख्या विशेषज्ञ अल्फ्रेड सॉवी ने किया था। इन्होंने इस शब्द का प्रयोग एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के नवोदित देशों के लिये किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विश्व पूंजीवादी एवं साम्यवादी गुटों में विभाजित था। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के कई राष्ट्र औपनिवेशिक शासन के शोषण से मुक्त हुए थे। इस तरह **औपनिवेशिक शोषण से मुक्त हुए नव स्वतंत्र देशों को तृतीय विश्व के नाम से जाना गया।**

ये देश न ही किसी गुट में शामिल हुए और न ही कोई गुट बनाया; यही राष्ट्र आगे चलकर गुटनिरपेक्ष आंदोलन के सूत्रधार बने।

तृतीय विश्व की विशेषताएँ *(Characteristics of Third World)*

- तृतीय विश्व की अवधारणा मौलिक रूप से राजनीतिक है। यह एक तृतीय विश्व था, क्योंकि इसने विश्व के दो भागों में विभाजन की अवधारणा को स्वीकार किया था। इस प्रकार तृतीय विश्व का उदय शीतयुद्ध की राजनीति के परिणामस्वरूप हुआ।
- तृतीय विश्व समरूप समूह (Homogenous group) नहीं है। इसमें विभिन्न महाद्वीपों के लोग शामिल हैं। उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अलग-अलग है तथा उनकी राजनीतिक व्यवस्थाएँ भी भिन्न-भिन्न हैं। तृतीय विश्व के कुछ देशों की किसी न किसी रूप में समाजवाद के लिये प्रतिबद्धता है। कुछ की पूंजीवाद में पूरी आस्था है। इनमें से भारत सहित अनेक देशों में उदार लोकतंत्र है। वियतनाम तथा क्यूबा जैसे देशों में जनवादी लोकतांत्रिक (समाजवादी) सरकारें हैं और कुछ में सैनिक शासन।
- तृतीय विश्व की अवधारणा का आधार गुटनिरपेक्षता की नीति थी। समय के साथ तृतीय विश्व ने आर्थिक परिभाषा को ग्रहण कर लिया और आर्थिक दशा उसकी महत्त्वपूर्ण पहचान भी बन गई।
- तृतीय विश्व अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में एक अभिनेता नहीं है, क्योंकि यह किसी एक देश के निर्देशन में कार्य नहीं करता, फिर भी तृतीय विश्व को एक इकाई मान सकते हैं, क्योंकि इनकी एक समान शैली, समस्याएँ और एकसमान आकांक्षाएँ हैं।
- प्रथम विश्व में अनेक उदार लोकतांत्रिक देश थे, जिन्हें पूंजीवादी देश भी कहा जाता था और संयुक्त राज्य अमेरिका इस गुट का नेतृत्व करता था। अत: प्रथम गुट अमेरिकी गुट या पूंजीवादी गुट था। दूसरे विश्व में सोवियत संघ के नेतृत्व में पूर्वी यूरोप के समाजवादी देश थे। इनको अधिनायकवादी गुट, पूर्वी गुट अथवा समाजवादी गुट भी कहा जाता था। एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के नवोदित देशों ने अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिये गुटनिरपेक्ष नीति को आधार बनाया और तृतीय विश्व के रूप में जाने गए।

तृतीय विश्व की भूमिका *(Role of Third World)*

- अनेक विविधताओं के बावजूद विभिन्न अवसरों पर तृतीय विश्व ने आपस में एकता दिखाई है और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी उपस्थिति को प्रभावी तरीके से दर्ज किया है। संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न मंचों पर भी तृतीय विश्व की एकता

अध्याय
21

संयुक्त राष्ट्र संघ एवं वैश्विक विवाद (United Nation Organisation and Global Dispute)

21.1 राष्ट्रसंघ का उद्भव	21.7 महासचिव की भूमिका
21.2 संयुक्त राष्ट्र संघ	21.8 संयुक्त राष्ट्र संघ और तीसरी दुनिया
21.3 सुरक्षा परिषद में वीटो के प्रयोग पर विवाद	21.9 संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत की भूमिका
21.4 राष्ट्रसंघ एवं संयुक्त राष्ट्र संघ: तुलनात्मक अध्ययन	21.10 संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रासंगिकता
21.5 संयुक्त राष्ट्र संघ एवं वैश्विक विवाद	21.11 यूनेस्को के संबंध में विवाद एवं सुधार
21.6 संयुक्त राष्ट्र संघ एवं मानव अधिकार	21.12 सुरक्षा परिषद भारत एवं G – 4 देश

प्रस्तुत अध्याय में हम राष्ट्रसंघ और संयुक्त राष्ट्र संघ तथा वैश्विक विवादों का अध्ययन विस्तार से करेंगे।

21.1 राष्ट्रसंघ का उद्भव *(Rise of League of Nations)*

पृष्ठभूमि

प्रथम विश्वयुद्ध का कोई एक विशेष कारण न था, बल्कि यह राष्ट्रों के मध्य छोटे-छोटे द्वंद्वों का ही विकराल रूप था। तो क्या इस विकरालता को रोका जा सकता था? 1795 में सर्वप्रथम इमैनुएल काण्ट ने अपनी पुस्तक 'परपेचुअल पीस: एक फिलोसोफिकल स्केच' में राष्ट्रों के एक संघ के विचार की रूपरेखा रखी थी, जो राष्ट्रों के बीच संघर्षों को नियंत्रित करे और शांति को प्रोत्साहित करे। तब से कई युद्ध हुए परंतु 1918 में समाप्त हुए प्रथम विश्वयुद्ध ने बहुत गहरे प्रभाव छोड़े थे। युद्ध ने पूरे यूरोप में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक तंत्रों को प्रभावित किया एवं साथ ही मनोवैज्ञानिक और अपार जन हानि भी हुई। युद्ध हेतु ज़िम्मेदार कारक हथियारों की दौड़, गठबंधन, गुप्त संधियाँ, कूटनीति और संप्रभु राष्ट्र की स्वतंत्रता थे। अत: अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसे संगठन की आवश्यकता महसूस की गई जो निरस्त्रीकरण, युद्ध में रोक, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग, खुली कूटनीति और सामूहिक सुरक्षा के माध्यम से विश्व शांति में सहायक हो।

1918 से जारी प्रयासों के फलस्वरूप 28 जून, 1919 को 'वर्साय की संधि' द्वारा राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई जो औपचारिक रूप से 10 जनवरी, 1920 को अस्तित्व में आया और उसी दिन वर्साय की संधि लागू हुई।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय से ही बहुत सी सरकारों और समूहों ने पहले से ही युद्ध की पुनरावृत्ति को रोकने की योजनाएँ बनानी शुरू कर दी थीं। संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने प्रथम विश्वयुद्ध में देखे गए रक्तपात की पुनरावृत्ति को रोकने के एक माध्यम के रूप में संघ के विचार को प्रोत्साहित किया और संघ बनाना विल्सन के चौदह सूत्री शांति कार्यक्रम का केंद्र भी था। विशेष रूप से अंतिम बिंदु में प्रावधान था कि "बड़े और छोटे राष्ट्रों के लिये समान रूप से राजनीतिक स्वतंत्रता और क्षेत्रीय अखंडता की परस्पर गारंटी देने के उद्देश्य से विशिष्ट कानूनों के अतंर्गत राष्ट्रों का एक महासंघ बनाया जाना चाहिये।"

राष्ट्रसंघ के अंग *(Organs of the League of Nations)*

संघ में आरंभ में 44 सदस्य थे। संयुक्त राज्य अमेरिका ने इसका सदस्य न बनने का फैसला किया। 1926 में जर्मनी को भी इसका सदस्य बनाया गया। इसके तीन प्रमुख अंग थे-

सभा *(Assembly)*

सभा में संघ के सभी सदस्यों के प्रतिनिधि शामिल थे। प्रत्येक राष्ट्र को तीन प्रतिनिधियों को नियुक्त करने की अनुमति थी और मताधिकार एक था। सभा की बैठक जेनेवा में हुई और 1920 में इसके प्रारंभिक सत्रों के बाद प्रत्येक साल इसके सत्र एक बार सितंबर में होते थे। किसी भी सदस्य के अनुरोध पर सभा का विशेष सत्र बुलाया जा सकता था, जिसके लिये सदस्यों का बहुमत आवश्यक था।

अध्याय
22

यूरोप का एकीकरण (Unification of Europe)

22.1 यूरोप का एकीकरण : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
22.2 यूरोपीय समुदाय
22.3 यूरोपीय संघ
22.4 भारत और यूरोपीय संघ
22.5 उत्तर अटलांटिक संधि संगठन

20वीं शताब्दी में हुए दो महायुद्धों के बीच हुए परिवर्तनों ने यूरोप के विभाजन को और तीव्र कर दिया। यह विभाजन जहाँ तक एक तरफ वैचारिक रहा तो वहीं दूसरी तरफ राजनीतिक शासन प्रणाली के आधार पर भी विभेद दिखाई पड़ा। यूरोप के इस विभाजन ने जहाँ एक तरफ युद्ध में उन्हें आमने-सामने खड़ा कर दिया वहीं दूसरी तरफ आर्थिक गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व रंगमंच से यूरोप का पटाक्षेप हो गया। अतः अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये यूरोपीय एकता को सुदृढ़ करना ज़रूरी समझा गया। इसके लिये विविध आर्थिक और राजनीतिक संगठन बनाए गए। इन उपायों के माध्यम से सामूहिक प्रयत्न के द्वारा ही यूरोपीय राष्ट्रों ने अपनी समस्याओं का समाधान ढूंढने का प्रयत्न किया। वास्तव में यूरोप के एकीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत तो पश्चिमी यूरोपीय राष्ट्रों को एक सूत्र में रखने हेतु नाटो की स्थापना के साथ हुई। आगे चलकर यूरोपीय समुदाय और उसके विभिन्न अंगों के निर्माण ने अभी तक जारी एकीकरण को प्रभावी दिशा प्रदान की।

20वीं शताब्दी के यूरोपीय एकीकरण की प्रक्रिया को समझने से पूर्व यूरोप की पारंपरिक विरासत को समझना वांछनीय होगा, क्योंकि इस विरासत ने तमाम मतभेदों के बावजूद भी यूरोप के देशों में आपसी एकता को बनाए रखा, किंतु इस प्रश्न पर भी विचार करना आवश्यक है कि इस यूरोपीय एकता में बिखराव कैसे आया?

22.1 यूरोप का एकीकरण : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि *(Unification of Europe : Historical Background)*

- यूरोपीय महाद्वीप की भौगोलिक सांस्कृतिक एकता इतिहास में निरंतर रूप से झलकती है। यह अकेला ऐसा महाद्वीप है, जिसकी जनसंख्या जातीय आधार पर या धार्मिक मान्यता के अनुसार एशिया या अफ्रीका जैसे अन्य पुरानी दुनिया के सदस्य महाद्वीपों की तुलना में एकरस रही है। कोई बहुत ऊँची पर्वत शृंखला या नौकावहन में दिक्कत पैदा करने वाली नदियाँ, मरुस्थल या जंगल यूरोपीय महाद्वीप में ऐसी प्राकृतिक बाधाएँ प्रस्तुत नहीं करते जो आवागमन में रुकावट पेश करती हों। बड़े-बड़े विख्यात कलाकार, प्रतिभाशाली वैज्ञानिक, चिंतक, दार्शनिक, अध्यापक एक राज्य के आश्रयदाता से दूसरे राज्य के आश्रयदाता तक बहुत आसानी से अपनी पहुँच बना सकते थे। यही सुविधा शिल्पकारों व कुशल कारीगरों को प्राप्त थी।
- यूरोप की एकता को विकसित करने में निश्चय ही प्राचीन काल में यूनानियों और रोमनों ने तथा मध्य युग में ईसाई धर्म ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ब्रिटेन से लेकर रूस की सरहद तक सभी जगह यूनानियों को पश्चिमी सभ्यता का जनक माना जाता है। सुकरात, अरस्तू और प्लेटो जैसे दार्शनिक हों या फिर पाइथागोरस और आर्कमिडीज जैसे वैज्ञानिक इन्हें पूरा पश्चिमी जगत शास्त्रीय कसौटी स्वीकार करता है। ग्रीक महाकाव्यों का अध्ययन एवं उनकी शैली का अनुकरण यूरोप के सभी देशों में शिक्षा का आधार समझे जाते रहे हैं होमर द्वारा रचित महाकाव्य 'ओडिसी' या 'इलियट' हो या सोफोकिलिस के दुखांत नाटक। साहित्य के क्षेत्र में शिल्प और शैली का आदर्श भी प्राचीन यूनानी कलाकृतियाँ ही समझी जाती हैं। सत्ता, स्वतंत्रता, मनुष्य जीवन, अर्थ, नैतिकता और न्याय, जनतंत्र विषयक बुनियादी स्थापनाओं का श्रेय यूनानी चिंतकों को ही दिया जाता है। इस सांस्कृतिक विरासत में साझेदारी के कारण यूरोप के निवासी अपनी पहचान विश्व की दूसरी प्रमुख सभ्यताओं से फर्क करने के लिये करते रहे हैं। यह यूनानी सभ्यता प्राचीन मिस्र, सुमेर, ईरान, भारत और चीन की सभ्यता से भिन्न थी।
- इसी तरह रोमन साम्राज्य के काल में कानून, शासन प्रणाली, भवन निर्माण, ऋण संचालन आदि के क्षेत्र में जिन परंपराओं की प्रतिष्ठा हुई है वे भी पश्चिम से प्रेरित और उसकी साझे की विरासत कही जा सकती हैं। विडंबना यह है कि प्रारंभिक

अध्याय
23

सोवियत संघ का विघटन
(Disintegration of Soviet Union)

23.1 सोवियत संघ के विघटन के कारण व प्रभाव	23.3 यूगोस्लाविया का विघटन
23.2 पूर्वी यूरोप में राजनीतिक परिवर्तन (1989-2001)	23.4 शीतयुद्ध की समाप्ति तथा अमेरिकी प्रभुत्व

सोवियत संघ के विघटन और सोवियत साम्यवादी साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया का आरंभ आमतौर पर बदलाव चाहने वाली नई पीढ़ी के नेता मिखाईल गोर्बाच्येव (Gorbachev) के सत्ता ग्रहण करने के साथ जोड़ा जाता है। वास्तव में सोवियत संघ के विघटन की प्रक्रिया बहुत पहले शुरू हो चुकी थी। सोवियत संघ के विघटन के अनेक बुनियादी एवं ऐतिहासिक कारण हैं, जो सतही नज़र डालने पर नहीं दिखते।

23.1 सोवियत संघ के विघटन के कारण व प्रभाव
(Causes and Effects of the Disintegration of the Soviet Union)

पृष्ठभूमि

- 1917 में बोल्शेविक क्रांति ने सोवियत संघ नामक एक नए साम्यवादी राज्य को जन्म दिया। इसी के साथ सोवियत संघ ने आरंभ में ही यह स्पष्ट कर दिया कि राजनीतिक व्यवस्था और साम्यवादी संगठन समाजवादी विचारधारा पर आश्रित होंगे तथा साम्यवादी मार्क्सवादी विश्व दर्शन ही राष्ट्रहित को परिभाषित करने की एकमात्र कसौटी होगा। यह स्वाभाविक था कि इस क्रांतिकारी साम्यवादी राज्य को पूंजीवादी पश्चिमी राज्यों ने अपना जन्मजात शत्रु समझा।
- 1920 एवं 30 के दशक में लेनिन की मृत्यु के बाद स्टालिन ने अपने को सर्वोच्च नेता के रूप में स्थापित किया और उस देश में साम्यवादी पार्टी की तानाशाही स्थापित हो गई। स्टालिन (1924-53) ने अपने विरोधियों का बर्बरता से उन्मूलन व दमन किया। इस कारण सोवियत संघ की पहचान जनतंत्र का हनन करने वाले एक राज्य के रूप में होने लगी। आगे स्टालिन की मृत्यु के बाद भी ख्रुश्चेव (Khruschev: 1955-64) तथा ब्रेझनेव (Brezhnev: 1964-82) के शासन में भी तानाशाही प्रवृत्तियाँ मौजूद रहीं। नागरिक स्वतंत्रता, प्रशासन, विदेश यात्रा आदि पर प्रतिबंध जारी रहा। एक तरीके से लोक भावना पर **'लोहे के पर्दे' (Iron Curtain)** डाल दिये गए थे।
- **'सर्वहारा के अधिनायकत्व'** का अर्थ ही था कि सत्ता सर्वहारा वर्ग के हाथ में हो। मेहनतकश जनता के बुनियादी अधिकारों की गारंटी तथा राज्य की नीतियों के निर्माण में उनकी भागीदारी को सुनिश्चित करना ही समाजवादी प्रजातंत्र का सारतत्त्व था। सोवियत यूनियन ने इस प्रजातंत्र की स्थापना का प्रयास नहीं किया जिसके फलस्वरूप 'सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व' सर्वहारा वर्ग पर राज्य व पार्टी में शीर्ष स्थानों पर आसीन नेताओं के अधिनायकत्व में बदल गया। जनता राज्य तथा व्यवस्था के प्रति उदासीन हो गई। उसकी उदासीनता एवं आक्रोश इस सीमा तक पहुँच गई कि जब व्यवस्था का अंत किया गया तो उसके बचाव में जनता के किसी भी हिस्से से एक स्वर भी नहीं फूटा।
- रूस न केवल भौगोलिक दृष्टि से दुनिया का सबसे बड़ा राज्य था बल्कि उसकी आबादी अद्‌भुत विविधता झलकाने वाली बहुराष्ट्रीय थी। रूसी जारो ने इस विस्तृत साम्राज्य को केंद्रीय प्रशासन के अधीन करने का कोई प्रयत्न नहीं किया किंतु सोवियत साम्यवादी पार्टी ने अत्यधिक केंद्रीयकरण करने का प्रयास किया और यह जातीय विविधता सोवियत संघ की राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिये खतरा बनी रही। सोवियत साम्यवादी पार्टी इस उलझी गुत्थी का समाधान ढूंढने में असमर्थ रही। शीतयुद्ध के वर्षों में पश्चिमी शक्तियों का दुष्प्रचार इस चुनौती को विस्फोटक बनाता रहा।
- सोवियत साम्राज्य ने जिन पूर्वी देशों को अपने प्रभाव में लिया था, जैसे- हंगरी, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया आदि उन सभी जगहों में स्वाधीनता की ललक सोवियत संघ के लिये चिंता का विषय बना रहा।

अध्याय
24

यूरोपीय साम्राज्यवाद : अफ्रीका व एशिया
(European Imperialism : Africa and Asia)

24.1 साम्राज्यवाद	24.4 यूरोपीय साम्राज्यवाद व अफ्रीका
24.2 अटलांटिक पार दास व्यापार	24.5 यूरोपीय साम्राज्यवाद व एशिया
24.3 साम्राज्यवाद तथा मुक्त व्यापार	24.6 नव-साम्राज्यवाद

24.1 साम्राज्यवाद *(Imperialism)*

- लेनिन ने 1916 में अपनी पुस्तक 'साम्राज्यवाद पूंजीवाद का अंतिम चरण' में लिखा कि साम्राज्यवाद एक निश्चित आर्थिक अवस्था है जो पूंजीवाद के चरम विकास के समय उत्पन्न होती है। चार्ल्स ए-बेयर्ड के अनुसार- ''सभ्य राष्ट्रों की कमज़ोर एवं पिछड़े लोगों पर शासन करने की इच्छा व नीति ही साम्राज्यवाद कहलाती है।'' 15वीं-16वीं शताब्दी में भौगोलिक अन्वेषण के फलस्वरूप औपनिवेशिक साम्राज्यों का युग आया। इस साम्राज्यवादी युग को दो भागों में बाँटकर अध्ययन किया जा सकता है- पुराना और नवीन साम्राज्यवाद। पुराने साम्राज्यवाद का आरम्भ लगभग 15वीं शताब्दी से माना जा सकता है जब स्पेन और पुर्तगाल ने इस क्षेत्र में कदम बढ़ाया। साम्राज्यवाद का यह दौर 18वीं शताब्दी के अंत तक चला। स्पेन और पुर्तगाल ने तमाम देशों की खोजकर वहाँ अपनी व्यापारिक चौकियाँ स्थापित कीं। धीरे-धीरे फ्राँस और इंग्लैंड ने भी इस दिशा में कदम बढ़ाया। इंग्लैंड का औपनिवेशिक साम्राज्य संपूर्ण विश्व में स्थापित हो गया।
- 19वीं शताब्दी में इस साम्राज्यवाद ने नवीन रूप धारण किया। 1870 ई. के बाद यूरोप के देशों में साम्राज्यवादी भावना नए रूप में सामने आई। यह नव साम्राज्यवाद पहले के उपनिवेशवाद से आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से भिन्न था। पुराना साम्राज्यवाद वाणिज्यवादी था, यह भारत हो या चीन अथवा दक्षिण-पूर्व एशिया। यूरोपीय व्यापारी स्थानीय सौदागरों से उनका माल खरीदते थे। मार्गों की सुरक्षा के लिये कुछेक स्थानों पर कार्यालयों तथा व्यापारिक केंद्रों की रक्षा के अतिरिक्त यूरोपीय राष्ट्रों को राज्य या भूमि की भूख नहीं थी। नव साम्राज्यवाद के दौर में अब सुनियोजित ढंग से यूरोपीय देश पिछड़े इलाकों में प्रवेश कर उन पर प्रभुत्व जमाने लगे। इन क्षेत्रों में उन्होंने पूंजी लगाई, बड़े पैमाने पर खेती आरंभ की, खनिज तथा अन्य उद्योग स्थापित किये, संचार और आवागमन के साधनों का विकास किया तथा सांस्कृतिक जीवन में भी हस्तक्षेप किया। अपने प्रशासित इलाकों की परंपरागत अर्थव्यवस्था और उत्पादन अर्थव्यवस्था को विनष्ट करके बहुसंख्यक स्थानीय लोगों को विदेशी मालिकों पर आश्रित बना दिया।

उपनिवेशवाद

- उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद में स्वरूपगत भिन्नता दिखाई पड़ती है। उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद से अधिक जटिल है क्योंकि यह उपनिवेशवाद के अधीन रह रहे मूल निवासियों के जीवन पर गहरा तथा व्यापक प्रभाव डालता है। इसमें उपनिवेश के लोगों पर उपनिवेशी शक्ति के लोगों का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक नियंत्रण स्थापित होता है तो दूसरी तरफ साम्राज्यवाद में साम्राज्यिक राज्यों पर राजनीतिक शासन की व्यवस्था शामिल होती है। इस तरह साम्राज्यवाद में मूल रूप से राजनीतिक नियंत्रण की व्यवस्था है, वहीं उपनिवेशवाद औपनिवेशिक राज्य के लोगों द्वारा विजित लोगों के जीवन तथा संस्कृति पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की व्यवस्था है। साम्राज्यवाद के प्रसार हेतु जहाँ सैनिक शक्ति का प्रयोग और युद्ध प्रायः निश्चित होता है वहीं उपनिवेशवाद में शक्ति का प्रयोग अनिवार्य नहीं होता।

नवीन साम्राज्यवाद के प्रेरक तत्त्व

- **अतिरिक्त पूंजी का होना :** औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप यूरोप के देशों में धन का अत्यधिक संचय हुआ। इसके अतिरिक्त संचित पूंजी को यदि वहीं यूरोप के देशों में पुनः लगाया जाता तो लाभ बहुत कम मिलता जबकि पिछड़े हुए देशों में श्रम सस्ता होने से और प्रतियोगिता शून्य होने से अत्यधिक लाभ की संभावना थी। इसी कारण पूंजी को उपनिवेशों में लगाने की होड़ प्रारम्भ हुई।

अध्याय
25

औपनिवेशिक शासन से मुक्ति
(Liberation From Colonial Rule)

25.1 लैटिन अमेरिका : औपनिवेशिक शासन से मुक्ति	25.4 अफ्रीका : रंग-भेद नीति से लोकतंत्र की ओर
25.2 मिस्र का स्वाधीनता आंदोलन	25.5 दक्षिण-पूर्व एशिया : वियतनाम की स्वतंत्रता
25.3 अरब राष्ट्रवाद का उदय	25.6 विऔपनिवेशीकरण तथा अल्प विकास

25.1 लैटिन अमेरिका : औपनिवेशिक शासन से मुक्ति
(Latin America : Liberation from Colonial Rule)

- औपनिवेशीकरण के दौर में लैटिन अमेरिकी देशों में स्पेन ने नियंत्रण स्थापित किया। इन स्पेनिश उपनिवेशों में क्रांति अमेरिकी उपनिवेशों की भाँति एक संयुक्त प्रयास का परिणाम नहीं थी। वरन् स्पेनिश उपनिवेश स्वतंत्र रूप से अपनी आज़ादी के लिये लड़े। लैटिन अमेरिकी देशों में मुक्ति आंदोलन का नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों में प्रमुख थे- फ्राँसिस्को डी मीरान्डा, फादर हिडाल्गो, जॉन्स डिसान मार्टिन, साइमन बोलीवर आदि।

साइमन बोलीवर की भूमिका

- साइमन बोलीवर का नाम लैटिन अमेरिका के स्वतंत्रता आंदोलन में सबसे ऊपर है। बोलीवर का जन्म वेनेजुएला के काराकास में सन् 1783 को हुआ था। बोलीवर ने औपनिवेशिक मुक्ति की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। वेनेजुएला, कोलंबिया, इक्वाडोर, पनामा, बोलीविया, उत्तरी पेरू आदि साइमन बोलीवर को अपना मुक्तिदाता समझते थे। साइमन बोलीवर ने 1813 में काराकास पर नियंत्रण स्थापित कर अपनी सरकार स्थापित की। इसी तरह उसने कोलंबियाई सेना का नेतृत्व करते हुए बगोटा पर 1814 में कब्ज़ा कर लिया। हैती में भी उसने एक सेना का नेतृत्व किया। 1819 में साइमन बोलीवर ने स्पेनिशों को पराजित करके कोलंबिया को स्वतंत्र कराया। उसने एक कोलंबिया गणराज्य की स्थापना की जिसमें कोलंबिया, वेनेजुएला, पनामा, इक्वाडोर शामिल हो गए और 1819 में बोलीवर स्वयं इस गणराज्य का प्रथम राष्ट्रपति बना।
- स्पेनिश औपनिवेशिक शासन को चुनौती देते हुए बोलीवर ने आगे बढ़ते हुए इक्वाडोर पर अधिकार कर उसे नवीन गणराज्य में मिला लिया। 1824 में वह पेरू का भी शासक बना और इसी समय अयाकुचो पेरू के युद्ध में स्पेनिश सेना को हराकर बोलीवर ने दक्षिण अमेरिका में स्पेनी ताकत को समाप्त कर दिया। ऊपरी पेरू में बोलीविया के नाम से एक नए राज्य को मान्यता मिल गई। बोलीविया के संविधान में साइमन बोलीवर की महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घोषणाएँ शामिल हैं।
- साइमन बोलीवर लैटिन अमेरिकी देशों का एक संघ बनाना चाहता था ताकि इन देशों के आपसी संबंध घनिष्ठ बने और उपनिवेशवाद के विरुद्ध एक सशक्त मोर्चा खड़ा किया जाए, किंतु इस प्रयास में वह सफल नहीं हो पाया और 1830 में उसने कोलंबिया गणराज्य के राष्ट्रपति पद से त्याग पत्र दे दिया। लैटिन अमेरिकी देशों को औपनिवेशिक शासन से मुक्ति दिलाने में साइमन बोलीवर का योगदान अविस्मरणीय है। आज भी लैटिन अमेरिका के गद्य और पद्य काव्यों में साइमन बोलीवर राष्ट्र निर्माता के रूप में मौजूद हैं।
- लैटिन अमेरिकी गणराज्य स्वाधीनता प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी समस्याओं से मुक्त नहीं हो सके। बहुसंख्यक जनता साक्षर नहीं थी, वर्ग भेद कायम था। शासक वर्ग भ्रष्टाचार और तानाशाही तौर-तरीकों का प्रयोग करते थे और अधिकांश देशों में लोकतंत्र एक स्वाँग मात्र रह गया था। एशिया-अफ्रीकी राज्यों की तरह लैटिन अमेरिकी राज्यों के सामने सामाजिक, आर्थिक पुनर्निर्माण तथा राष्ट्र निर्माण की समस्या विद्यमान थी। ये आज अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी भूमिका के प्रति सजग हैं और तृतीय विश्व के बहुत बड़े भाग के रूप में मौजूद हैं।

डी.एल.पी. बुकलेट्स की विशेषताएँ

- आयोग के नवीनतम पैटर्न पर आधारित अध्ययन सामग्री।
- पैराग्राफ, बुलेट फॉर्म, सारणी, फ्लोचार्ट तथा मानचित्र का उपयुक्त समावेश।
- विषयवस्तु की सरलता, प्रामाणिकता तथा परीक्षा की दृष्टि से उपयोगिता पर विशेष ध्यान।
- प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए एवं संभावित प्रश्नों का समावेश।

Website : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

DrishtiIAS

YouTube Drishti IAS

drishtiias

drishtithevisionfoundation

641, First Floor, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009
Phones : 011-47532596, +91-8130392354, 813039235456